International Journal of Applied Research 2023; 9(11): 171-173

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor (RJIF): 8.4
IJAR 2023; 9(11): 171-173
www.allresearchjournal.com
Received: 12-09-2023
Accepted: 16-10-2023

डॉ. विमलेन्दु कुमार विमल
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
एस0एम0आर0सी0के0
महाविद्यालय, समस्तीपुर
ग्राम–सिरदिलपुर, पो0–पटोरी
जिला–समस्तीपुर, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ. विमलेन्दु कुमार विमल
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
एस0एम0आर0सी0के0
महाविद्यालय, समस्तीपुर
ग्राम–सिरदिलपुर, पो0–पटोरी
जिला–समस्तीपुर, बिहार, भारत

ग्रीष्म और ग्राम्य गीत

डॉ. विमलेन्दु कुमार विमल

सारांश
लोक भावनाओं से जुड़ी लोक भाषा में प्रचलित या लिखित साहित्य को लोक–साहित्य की संज्ञा दी जाती है। इसकी परम्परा उतनी ही पुरानी है जितना प्राचीन सृष्टि का विकास।
ग्राम्य गीतों में हृदय की सहज अनुभूतियाँ सजीव भाषा में मार्मिक ढ़ंग से रागात्मक रूप में व्यंजित होती हैग्रीष्म ऋतु मुख्यतः तीन महीने ही प्रकृति के हृदय–पटल पर अपनी विकरालता के लिए विख्यात है–चैत, वैशाख और जेठ।
चैत मास में गोरी का चित चंचल और यौवन उसे भार–सा लगने लगा है। भले ही वैशाख के तप्त अंगारों की बौछार से उसका शरीर पानी–सा होकर खलबलाने हीं क्यों ना लगे? लेकिन, वह अपने प्रियतम के बिना अपने शरीर पर चंदन का लेप नहीं चढ़ायेगी।

कूटशब्द : ग्रीष्म और ग्राम्य गीत, लोक भावनाओं, हृदय–पटल, सृष्टि का विकास।

प्रस्तावना
लोक भावनाओं से जुड़ी लोक भाषा में प्रचलित या लिखित साहित्य को लोक–साहित्य की संज्ञा दी जाती है। लोकगीत मानव–कंठ के द्वारा सदियों से अपने पूर्व परिवेश में चलकर आज भी उसी रूप में अक्षुण्ण है। इसकी परम्परा उतनी ही पुरानी है जितना प्राचीन सृष्टि का विकास।
ग्राम्य गीतों में हृदय की सहज अनुभूतियाँ सजीव भाषा में मार्मिक ढ़ंग से रागात्मक रूप में व्यंजित होती है जिससे मन–वीणा झंकृत हो जाती है, क्योंकि जन्म से लेकर मृत्यु तक के विविध आयामों से प्रसरित मानव–मन की भावनाओं की सच्ची अभिव्यक्ति जीवन्त रूप में ग्राम्य गीतों में ही हो पाती है। तभी तो राम नरेश त्रिपाठी ने लिखा है–''लोकगीत तो ग्राम ही की संपत्ति है।'' इसीलिए आज के कोलाहल भरे परिवेश में इन गीतों की विशिष्ट पहचान ग्रामीण क्षेत्रों में अब भी बनी हुई है।
अपने देष में यद्यपि छः ऋतुएँ हैं, जिनमें मात्र तीन ही प्रधान है–जाड़ा, गर्मी और बरसात। ग्रीष्म ऋतु मुख्यतः तीन महीने ही प्रकृति के हृदय–पटल पर अपनी विकरालता के लिए विख्यात है–चैत, वैषाख और जेठ। ग्रीष्म पर वीरगाथा काल से लेकर हिन्दी के आधुनिक काल तक के कवियों ने अपनी तूलिका चलाई है। साथ ही संस्कृत साहित्य के उन्मत गायक महाकवि कालिदास ने अपने गीतिकाव्य ''ऋतु संहार'' में ग्रीष्म के वर्णन में बड़ी हीं स्वाभाविकता का सन्निवेश किया है–

''गज–गवय–मृगेन्द्राः वहिन–संतप्त देहा।
सुहृद इव समेता द्वन्द्वभावं विहाय।
दुतवह–परिखेदात्–आशु निर्गत्य कक्षा
द्विपुल–पुलिन देशां निम्नगां संविशन्ति।''[1]

अर्थात–ग्रीष्म के ताप से व्यथित हाथी और सिंह के झुंड अपने स्वाभाविक शत्रु भाव को त्याग कर पहाड़ की गुफाओं में शीतलता प्राप्ति के लिए भटक रहे हैं। साथ ही वे सभी प्यास बुझाने के लिए सरिताओं की ओर भी जा रहे हैं। यह तो ग्रीष्म की ही विशेषता है कि उसने शत्रु–भाव को भी मित्र–भाव में परिवर्तित कर दिया है। यही कारण है कि मुक्तक सम्राट बिहारीलाल ने लिखा है–

''जगतु तपोवन सौ कियो दिरध, दाधनिदाध''[2]

यानि की ग्रीष्म ने अपने प्रभाव से इस जगत को ही तपोवन के रूप में परिवर्तित कर दिया है।

ग्रीष्म ऋतु में चैत उतरते और वैशाख चढ़ने पर सूर्य की किरणों से मानों अंगार बरसने लगता है। चारों तरफ अग्नि के दाहक परिवेश से हड़कंप मच जाता है जिससे प्रकृति के रोम–रोम प्रचंड लहरों से लहकने लगते हैं। नदी, नाला और तालाब के पानी सूख जाते हैं। पशु–पक्षी पानी के लिए तड़पने लगते हैं, जिससे लगता है सूर्य की किरणों से धरती पिघलकर धधक रही है या समुद्र रूपी सृष्टि जगत में मानों बाड़बाग्नि चल रही है। जिससे लगता है शायद पानी का स्रोत ही सूख गया है। तभी तो जायसी ने ''नागमती वियोग खंड के बारहमासा'' में लिखा है –

'जेठ जरे जग चलै लुवारा, उठहि बवंडर परहि अंगारा''।[3]

जेठ के महीना में चारों तरफ अंगार बरस रहे हैं और रह रहकर रोम–रोम को झूलसा देनेवाले अंगारों की आंधी उठ रही है जिससे मन व्याकुल और भयभीत हो रहा है। ऐसे परिवेश में विरहिणी नायिकाओं का धैर्य संयम की चहारदीवारी को पार करने लगता है। फिर तो वसंत के मादक परिवेश में कोयल की कूक विरहिणियों के हृदय में हूक भरने लगती है। इस स्थिति का वर्णन भोजपुरी सम्राट भिखारी ठाकुर ने अपने ''बारहमासा'' में सरसता के साथ किया है–

''कोइली के मीठी बोली, लागेला करेजे गोली
पिया बिनु भावे न चइतवा बटोहिया,। [4]

इतना ही नहीं डा0 नवलकिशोर प्र0 श्रीवास्तव ने अपने ''बारहमासा'' में ग्रीष्म के दुष्परिणामों का बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन किया है–

''वैशाख हे सखि! सूखेला धमुआ से
गछिया विरिछिया के पात हे।
पिया बिनु विरह में कुछ न सोहाय मोहे,
नीको न लागे दिन–रात हे।।''

ग्रीष्म की बेचैनी उस समय असहाय और पीड़ादयक लगने लगती है, जब पेड़–पौधे भी हमें शीतलता प्रदान करने में असमर्थ हो जाते हैं और वह भी ग्रीष्म के उवाल से त्रस्त होकर किसी दूसरे पेड़ की छाया के आगोष में जाने के लिए बेचैन रहते हैं। इस स्थिति का वर्णन बिहारीलाल ने बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढ़ंग से किया है–

''बैठी रही अति संघनबन पैठि सदन तन माँह,
निरख दुपहरी जेठ की छाहौं चाहति छाँह।''

मैथिल कोकिल विद्यापति ने अपने ''बारहमासा'' में ग्रीष्म के दाहक क्षण का उत्तेजक और सरस वर्णन किया है। वैशाख की तपन से धरती का पोर–पोर तप रहा है। वर्षा का कहीं नामोनिशान भी नही है। ग्रीष्म की चपेट में मनुष्य का मन हिरण–सा चंचल हो गया है। जिसके कारण यह स्थिति मृत्यु के समान कठोर और पीड़ादायक लग रही है। ऐसे में कामदेव विरहिणियों को अपने वाणों से घायल कर उसमें अधीरता पैदा कर रहे हैं–

''वैशाख तबे खर मरन समान। कामिनी कंत हनए पंचवान।

''डा0 बालगोविन्द झा ''व्यथित' ने अपने ''चौमासा'' मैथिली गीतों में नायिकाओं के हृदय के मार्मिक उद्गारों को छलका तो दिया है, लेकिन अपनी संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने का भरपुर प्रयाय भी किया है –

''चैत हे सखि, चित भेल चंचल यौवन भेल बलाय यों।
अन धन रहितए बेचि खेचिखाइत हूँ इहो न बेंचल जाय यों।
वैशाख हे सखि उष्म ज्वाला धाम से भींजल शरीर यों।
सगर षरीर चानन लेपितहूँ जूँ गृह रहितथि कांत यों।''[5]

चैत मास में गोरी का चित चंचल और यौवन उसे भार–सा लगने लगा है। फिर भी वह उसे मार्यादा की खोह से निकलने नहीं देती। भले ही वैषाख के तप्त अंगारों की बौछार से उसका शरीर पानी–सा होकर खलबलाने हीं क्यों ना लगे? लेकिन, वह अपने प्रियतम के बिना अपने शरीर पर चंदन का लेप नहीं चढ़ायेगी। दाम्पत्य प्रेम जीवन की प्रगाढ़ता लोकगीतों में डोलायमान होती रहती है। तभी तो यह प्रेम अर्हिनिश चिरंतर और गतिमान रहता है। सुख–दुःख के ताप से अक्षुण्ण स्नेह एक दूसरे के सहारे फलीभूत होकर सौहार्द उत्पन्न करते हैं। लगता ही नहीं है कि जीवन में विरह का कोई स्थान है। कदम ताल मिला कर जीवन की नैया प्रगति के पथ पर निरंतर अग्रसर रहती है। तभी तो नायिका अपनी मनोदशा को व्यक्त करती हुई कहती है–

'सूरज के गरमी से सेनुरा टपक गेलई,
अंचरा से करऽ न हो ओधार।
X X X
'कंधवा से कंधवा मिलाऽ मोर सजनवां,
जिनिगिया के कौनों न रे ठेकान।'[6]

इस गीत में दाम्पत्य हिलोंसे मार रही है। समर्पण का भाव जीवंत हो उठा है।
इतनी दारूण और दुष्कर स्थिति होते हुए भी ग्रीष्म का महीना भारतीय जीवन–जगत में खुशियों का उपहार भी लेकर आता है। खलिहान इस मौसम में अन्न से भरने लगते हैं। कटनी के दौर से मजदूर भी झूमने लगते हैं। ऐसे परिवेश में वह अपनी प्रिया के आमंत्रण का विस्मरण कर जाता है, क्योंकि पत्नी का व्यंग–वाणों से मर्माहत होकर ही वह किसान से मजदूर होकर प्रवासी हो गया। फिर वह खाली हाथ क्यों लौटे? इसका चित्रण भिखारी ठाकुर ने यथार्थ की कसौटी पर कस कर किया है –

''हरवा जोतइते तोरा गोरवा पिरइले,
रूपिया के मुँह नहीं देखली रे पियवा।''

इसलिए सजनी की स्मृति को दिल में बसाये वैशाख के बरसते अंगारों में पसीने से लथपथ होकर भी वह कर्म की प्रधानता को स्वीकारते हुए उमंगपूर्वक कटनी में लगा रहता है। –

''चैत नहीं आइब वैशाख नहीं आइब,
गोरी कटनी के हो महीनमा।
आहो चुयेला हो पसीनमा।
तेरा सूरत पे जरब नगिनवा हे धनिया,
आइब फागुन महीनबा।''[7]

जेठ की भरी दुपहरी मे सूर्य की सिंदूरी लपटों की चिलमिलाहट और हवाओं के उष्ण बवंडर से वनों में दावाग्नि चलने लगती है, जिससे वन में समस्त प्राणी रूई की तरह जलने लगते हैं, जिसकी भयंकर आवाजों से वातावरण प्रकंपित हो जाता है। धुंआ की काली घटाओं की मृगमरीचिका में किसान पानी की आशा लगाये आकाश की ओर देखने लगते हैं, फिर भी वर्षा नहीं होती, जिसे देख इन्द्र देवता भी ठगे से रह जाते हैं और सोचने लगते हैं – क्या मेरे पास जो पानी बरसाने की गगरी थी वह कहीं फूट गयी? इस परिचित्रण द्वारा अपने गीत में प्रो0 उमाकांत वर्मा ने विचित्र कौतुहल का समावेश किया है, जिसमें ग्रीष्म से उत्पन्न मानव–मन की अधीरता का बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण हुआ है –

''खेतवा के रोड़वा से सानल अखियाँ,
धधक देखतअ आकाश।
फूटि गइले गगरी का इन्नर सोचत
होई गईले लोरवो उदास। [8]

किन्तु ग्रीष्म की संध्या और रात्रि बड़ी ही सुहानी और मदमस्त होती है जब चाँदनी रात के चकाचौंध में फूलों के इत्र से युक्त शीतल–मंद समीर हमारी अन्तश्चेतना को स्पर्श करने लगते हैं, तब हममें नई स्फूर्ति और नई अभिलाषाओं का संचार होने लगता है। फिर तो प्रकृति अपने गजरों की गमक से अनुपम समां बांधने लगती है। बाबू रघुवीर नारायण ने अपने गीत ''बटोहिया' में प्रकृति के कोख से उपजे वृक्षों और पुष्पों के इत्र से मादक परिवेष का गुणगान कर रहे हैं –

'बिपिन अगम धन सवन बगन, बीच,
चम्पक कुसुम रंग देवे रे बटोहिया।
द्रुम बट पीपल, कदम्ब, निम्ब, आम, वृक्ष,
केतकी गुलाब फूल फूले रे बटोहिया।।'[9]

अँजुरी में चाँद' पुस्तक में, मैंने अपने गीत में फूलों की गमक से प्रकृति की चूनर में इत्र की गागर उड़ेल कर मुरझाये हुए दिलों को जीवंत करने की कोषिश की है –

'फुली फुली फूलवा गमके सारी रतिया –
गमकेला, फूल दिन दुपहरिया गमकेला।।
रिमझिम बरसेला नेह के नगरिया –
बरसेला, मेघ प्रेम–रस बुनिया बरसेला।।'[10]

ग्रीष्म की दाहकता में विरह रूपी प्रेम, प्रेम नहीं होता, वह तो रूदन है। विरह में हास्य का मिश्रण प्रेम की उदात्त को उभारता है। हास्य और विरह के बीच झूलता हुआ प्रेम उसके नैसर्गिक भाव को प्रकट करता है। इसलिए द्वारिका राय 'सुबोध' ने अपने 'सांसों के सरगम' में ग्रीष्म की जिजीविषा को इंगित किया है–

'शीतल कहां समीर है, चलती गर्म उसांस।
दसों दिशएं मौन है वातावरण उदास।।'[11]
जीवन का शष्वत स्वर इसी में समाहित है।

इस तरह ग्रीष्म से उत्पन्न उद्देलन की समाप्ति ग्राम्य जीवन में वर्षा के आग्रह से होती है। जब वर्षा की फुहारें धरती को चूमने लगती है, तब मन भविष्य के सपनों को सार्थक करने में लगा रहता है। फिर तो मौसम के बदलते ही ग्राम्य गीतों का स्वरूप भी बदलने लगता है। इसलिए लोकभाषा में विभिन्न ऋतुओं से संबंधित लोकगीतों की भरमार है। कुल मिलाकर ग्रीष्म गीतों में प्रेमगीत लौकिक प्रेम को एक नया आयाम प्रदान करते हैं।

संदर्भ

1. कालिदास – 'ऋतु संहार' मेरठ प्रकाशन, उत्तर प्रदेश
2. 'बिहारी सतसई' – अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली–6, पृष्ठ सं0–42
3. डा0 आशा किशोर–'चूड़ामणि,' प्रकाशन, हिन्दी विभाग, बिहार विष्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर पृ0 सं0–115
4. प्रो0 तैयब हुसैन पीड़ित – 'भिखारी ठाकुर के 'बारहमासा' गीतों में ऋतुगीत,' संवाद पत्रिका, लोक कलाकार मंच, दरियापुर (सारण)
5. डा0 बालगोविन्द झा 'व्यथित' – 'मैथिली ग्राम्य गीत,' मिथिलांचल प्रकाशक, दरभंगा पृष्ठ सं0–137
6. 'आजकल' पत्रिका, भारत सरकार, प्रकाषन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली, जून 1982 पृ सं0 10
7. द्वारिका राय 'सुबोध,' भोजपुरी लोक गीतों में फसल गीत, 'झरोखा' पत्रिका, चंदौली वाराणसी, पृष्ठ सं0–10
8. प्रो0 उमाकांत वर्मा – 'गीत जे गूंजत रहल,' प्रकाशक, भोजपुरी संस्थान, इन्द्रपुरी, पटना पृ0 सं0 27
9. श्री दुर्गाषंकर प्रसाद सिंह – 'भोजपुरी के कवि और काव्य', बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पृ0सं0 217
10. डा0 विमलेन्दु कुमार'विमल' – 'अंजुरी में चाँद' – देवेश प्रकाशन, पटोरी (समस्तीपुर) बिहार पृ0 सं0 38
11. द्वारिका राय 'सुबोध' –'सांसो के सरगम', किताब पब्लिकेषन, हाजीपुर रोड, मुजफ्फरपुर (बिहार) पृष्ठ सं0–56